**नदियों की आवाज** – राजेन्द्र सिंह

1857 के शहीदों को याद करते हुए आजादी की जंग का जश्न मना रहे हैं लेकिन नये प्रकार की आ रही गुलामी से हम बेखबर हैं। जीवन के आधार जल, जंगल, जमीन, अन्न व खुदरा व्यापार और नदियों पर कंपनियों का अधिकार हो रहा है। हमारा जल दूसरों के नियंत्रण में जा रहा है। *बोतलबंद पानी* दूध से भी महंगा बिक रहा हैं।

सन् 2002 की बनी जलनीति में सरकार ने प्रकृति प्रदत्त पानी का मालिकाना हक कम्पनियों को दे दिया है– जो पानी के साझे हक को खत्म करके किसी एक व्यक्ति या कंपनी को मालिक बनाती है। हमारा मानना है कि नई जलनीति ईस्ट इंडिया कंपनी की गुलामी से और अधिक भयानक गुलामी के रास्ते खोलती है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने हमारी जमीन पर नियंत्रण करके अंग्रेजी राज चलाया था, आज बहुराष्ट्रीय कंपनियां पानी को अपने कब्जे में करने में जुटी हैं और सरकारें पानी का मालिकाना हक कंपनियों को देकर नई गुलामी को पुख्ता करने में लगी हैं।

भारत में इसकी शुरुआत छत्तीसगढ़ में बहने वाली शिवनाथ नदी से हुई थी। उसे हमारे संगठन जल बिरादरी और वहां के समाज ने मिलकर रुकवाया था। अभी उड़ीसा के हीराकुंड बांध के पानी को किसानों से छीनकर दुनिया के बड़े–बड़े कारखानों को देने का मन वहां की सरकार ने बनाया तो, वहां के किसानों ने नेहरु की मूर्ति से लेकर गांधी मूर्ति तक लगभग 23 किमी. लम्बी 'मानव श्रृंखला' बनाकर उसको रुकवाने के लिए 'जल सत्याग्रह' किया।

इसी तरह राजस्थान में बीसलपुर बांध का पानी किसानों से छीनकर जयपुर– अजमेर शहर को देने की कोशिश का किसानों ने विरोध किया, जिसमें 5 किसान शहीद हुए। जल के लिए शहीद किसानों की कहानी, 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से अलग नहीं है। इसे यदि सरकारें नजरअंदाज करके मनमानी करतीं रहीं तो वर्तमान सरकार को भी आने वाला समय अंग्रेजों की तरह क्रूर कहेगा।

इसी के साथ हमें एक और चीज समझने की जरूरत है कि पानी के मामले में प्रायः पश्चिमी देशों का रवैया दोहरे मानदंड वाला ही रहता है। देखने में आया है कि पश्चिम के मुल्कों के द्वारा अपने और शेष विश्व के लिए पानी के बारे में बनाए गए नियम–कानून अलग–अलग होते हैं। शेष विश्व के लिए यूरोपीय यूनियन के नियम ज्यादातर पक्षपाती और दबाव पर ही आधारित होते हैं। इसलिए वे वह नहीं करते जिसको करने के लिए वे दूसरों को कहते हैं। आजकल यूरोप की नीतियों में बहुत बड़ा अंतर–विरोध दिख रहा है जो पानी के मामले में और गहरा होता जा रहा है।

पानी को विश्व व्यापार संगठन (डब्लूटीओ) के दायरे में लाने का मुख्य प्रस्तावक यूरोपीय यूनियन ही था। पिछले पाँच सालों में यूरोपीय यूनियन ने विकासशील देशों पर गैट और विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से दबाव डलवाकर उनके पानी सेक्टर को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खुलवा दिया। परंतु इसके ठीक विपरीत यूरोप के भीतर यूरोपीय यूनियन ने पानी तथा दूसरी संवेदनशील मुद्दों को उदारीकरण संबंधी बातचीत या चर्चाओं से निकाल दिया है। सामाजिक कार्यकर्ताओं और संगठनों ने यूरोपीय यूनियन से जोरदार ढंग से अपील की है कि वह अपनी गैट के अंतर्गत माँगों को वापस ले। क्योंकि उदारीकरण और निजीकरण के अभी तक सिर्फ़ नकारात्मक प्रभाव ही सामने आए हैं। इसलिए राष्ट्र की जल नीति वैश्विक व्यापार वार्ताओं द्वारा निर्धारित नहीं की जा सकती।

'इंसाफ' द्वारा किए गये एक अध्ययन के अनुसार ''हो यह रहा है कि साफ पानी तक आम आदमी की पहुंच पहले के मुकाबले आज ज्यादा कठिन होती जा रही है। पानी आम आदमी की रोजमर्रा की जिन्दगी का अहम हिस्सा है, पर कंपनियों के मुनाफे की होड़ में फंसकर काफी खतरनाक स्थिति हो गयी है। समाज के मालिकाना हक को नकार कर सार्वजनिक जल व्यवस्था के संचालन को निजी हाथों में दिये जाने की प्रक्रिया एशिया में तेजी से बढ़ती जा रही है। पानी तथा इससे जुड़ी अन्य सुविधाओं की कीमतों में लगातार बढ़ोतरी होने से लोगों को पानी मिलना ही मुश्किल हो रहा है। मुनाफे के लालच के कारण उन इलाकों में पानी की सुविधाएं घटती जा रही हैं, जहां पानी से ज्यादा मुनाफा नहीं मिल पा रहा है। इस स्थिति में हाशिये पर रहने वाले गरीब तबके और खासकर महिलाओं पर इसकी मार अधिक पड़ती है। बढ़ी हुई कीमतें अदा न कर सकने के कारण ऐसे परिवारों के लिए पानी का जुगाड़ करना ही मुश्किल हो गया है।'' यूरोपीय यूनियन दुनिया का संयुक्त रूप से सबसे बड़ा पानी के लिए सब्सिडी देने वाले समूह है, जो कि 1.4 बिलियन यूरो प्रतिवर्ष सहायता करता है। दुर्भाग्यवश यूरोपीय सरकारें पिछले दशकों से अपने सहायता–बजट का सहायतार्थ दी गई दान राशि का एक बड़ा भाग पानी की आपूर्ति करने में खर्च करती हैं। निजीकरण को बढ़ावा देने में खर्च किया जाता है ताकि विकासशील देशों में जल के निजीकरण को बढ़ाया जा सके ।

फ्रांस दुनिया का सबसे बड़ा पानी व्यवसायी कंपनियों का देश है। डच सरकार की जलनीति में भी जबर्दस्त विरोधाभास हैं। नयी जलनीति के अनुसार घरेलू जल सप्लाई में निजी आपरेटरों की भूमिका को पूरी तरह खारिज कर दिया गया है, जबकि अंतरराष्ट्रीय नीति इसके ठीक विपरीत है। ऐसी ही नीति जर्मनी, स्वीडन और स्विटजरलैंड की भी है। पिछले वर्ष निजीकरण की नीति के असफ़ल होने के बाद एक बार फिर यूरोपीय देश पानी और सीवेज के निजीकरण को दुबारा नए तरीके से लॉच करना चाहते हैं। पर निजीकरण की राह में बोलीविया का अनुभव रोड़ा बना हुआ है। जहां पर सरकार ने सात साल पुराने पानी के निजीकरण से संबंधित समझौते को रद्द कर दिया है जो फ्रांस की बहुराष्ट्रीय कंपनी ***वेक्टेल*** सीवेज और सरकार के बीच हुआ था। इसका कारण था कंपनी द्वारा पानी की बेतहासा कीमतें बढाना। वहां पर लोग पानी पर सरकार के साथ–साथ आम लोगों का भी अधिकार चाहते हैं।

पानी पर टीआई संगठन का रवैया मौजू है कि विकासशील देशों के कई समुदायों में पानी के निजीकरण के खिलाफ लड़ाई अब जीवन और मौत का मामला बन चुका है। मौजूदा चुनौती पानी के निजीकरण की प्रक्रिया का विरोध कर इसकी दिशा को बदल देने की है। इसी के साथ एक और महत्वपूर्ण चुनौती यह है कि पानी के निजीकरण का एक सार्वजनिक और प्रजातांत्रिक विकल्प ढूंढ़ा जाये। इस विकल्प को सार्थक बनाने के लिए आवश्यक सामाजिक परिवर्तन लाये जायें, तथा जैसे–जैसे हमारा यह संघर्ष आगे बढ़ेगा, तो साफ हो जायेगा कि निजीकरण का मुद्दा विकासशील देशों के निरंतर शोषण, दमन और उन पर दबदबा कायम कर लेने के मुद्दों से अलग नहीं है।

इसीलिए पानी पर समाज की हकदारी आज बहुत जरूरी हो गयी है। आज जब सरकार 1857 को एक उत्सव की तरह लालकिले में मना रही है। कभी यमुना को रमणीक छटाओं, पवित्र पानी के साथ बहने वाली नदी; राज और समाज को चलाने वाली जलधारा मानकर यह लालकिला यमुना किनारे बनाया गया था और यहीं से लम्बे समय तक देश का 'राज' चला। आज वही यमुना नाले में तब्दील हो गयी है। फिर यमुना स्वच्छता के नाम पर 'यमुना एक्शन प्लान' आदि बना और कर्ज लेकर उस पर हजारों करोड़ रुपये खर्च किया गया लेकिन यमुना नदी और गंदा नाला बनती गयी। हमेशा से यमुना दिल्ली को पानी पिलाती रही है। 22 किमी. लम्बी और 2 से 5 किमी. चौड़ाई में अपने निर्मल जल से भूजल भंडारों को भरती –बहती जाती थी। यमुना के दोनों तरफ तटबंध के क्षेत्र जो कि 'बाढ़ भराव' के क्षेत्र थे, दुःखद है कि अब वह होटल, हॉस्टल, मॉल्स आदि तरह–तरह के सीमेंट के कंक्रीट के जंगल में तब्दील हो रहे हैं। (पीएनएन)